चरित्रहीन

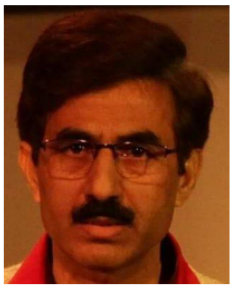

हिन्दी ADDA

एम हनीफ मदार

चरित्रहीन

श्री राम नाम सत्य है... सत्य बोलो गति है, श्री राम नाम सत्य है... सत्य बोले गति है...। अर्थी श्मशान पहुँच गयी। पीछे एक लम्बी भीड़ भी श्मशान स्थल पर इकट्ठी होती जा रही थी। ये भीड़ मैडम की अन्तयेष्टी में शामिल होने आयी थी मगर सब के

सब जैसे किसी मजबूरीवश यहाँ चल कर आये हों। सब के चेहरों पर जल्दी दाह-संस्कार सिलटने की व्याकुलता भी स्पष्ट झलक रही थी जबकि वे सब अपना-अपना बिजनेस या सर्विस यहाँ खड़े रहकर भी कर रहे थे मोबाइल्स के साथ या एक दूसरे के साथ मीटिंग में शेयर मार्केट या जमीनों के रेट जान कर।

हाँ! मैडम के किसी परिवारीजन या किसी निकट संबधी से सामना हो जाने पर उनके खिलते चेहरे एक दम लटक जाते जैसे किसी खास परिवारी की चिता जलने की तैयारी हो रही हो। एक पल में उनके चेहरे की रेखाऐं ही नहीं भाषा और शब्द भी बदल जाते "मेरी मुलाकात तो अभी पिछले मन्डे को हुई थी तब तक एक दम ठीक थीं मैम के साथ चाय पी थी देर रात तक बातें करती रहीं थीं... एक दम ही सब कुछ हो गया, सुबह सुना तो मुझे एक बार तो विश्वास ही नहीं हुआ।" कहते-कहते शर्मा जी का तो गला भी भर आया था। "बड़ी ही नेक और दिलखुश महिला थीं।" अंत में भरे गले से बस इतना ही बोले। यही शर्मा जी थे जब पिछले हफ्ते मैडम ने इनकी छुट्टी मंजूर नहीं की थी तो ऑफिस से बाहर आकर बड़े तैश में कह रहे थे "साली बड़ी जिद्दी है जम की जात... लम्बे समय तक इस कुर्सी पर तू ही नहीं रहेगी...? एक न एक दिन तो जाएगी ही। परन्तु अब एक दम से उन्हें देवी लग रही थी मैडम।

"जब भी ऑफिस से निकलती थीं, पीठ थपथपाकर परिवार तक का हाल-चाल पूछती थीं... बड़ी हिम्मत बड़ जाती थी हमारी ऐसा लगता था, माँ का प्यार मिल रहा है।" गुप्ता जी मुँह लटकाए जैसे अपनी माँ की चर्चा कर रहे हों। जबकि गुप्ता जी जानते हैं कि कल तक वे मैडम को आफत की पुड़िया कहते थे "परकटी, आफत की पुड़िया" गुप्ता जी के यह शब्द प्रचलित भी हो गये हैं। वर्मा जी तो फोन पर एन. टी. पी. सी. का रेट पूछते-पूछते एकदम से क्या कहने लगे "यार मैं यहाँ यमुनाघाट पर हूँ... हाँ यार वो हमारी मैडम आज सुबह एक्सपायर कर गयीं... एकदम से... हार्ट अटैक... हाँ यार परसों ही पूछ रहीं थीं वर्मा जी आपकी बेटी काफी दिन से मिलने नहीं आई... मैंने कहा हाँ मैडम! वह आज-कल एग्जाम की तैयारी कर रही है, परसों साथ ले आऊँगा... बोलीं बड़ी अच्छी बच्ची है... लेकिन आज...?" वर्मा जी ने जेब से रुमाल निकालकर आँखों में आए आँसुओं को सुखा लिया। वर्मा जी ने आए आँसू भी तब पौंछे जब वे आश्वस्त हो गये कि मैडम के भाई ने उन्हें देख लिया है और वे लाल आँखों से चिता के पास तक भी गये।

वर्मा जी इतना तो जानते ही हैं कि, आँसू तो आँसू होते हैं। खुशी में हों या गम में उनका रंग और रूप नहीं बदलता। आँसुओं को खुशी या गम का सर्टिफिकेट तो बाहर

का वातावरण देता है...। खुशी के माहौल में आँसू आ जाऐं तो खुशी के आँसू और वातावरण गमगीन हो तो दुःख के आँसू। तो वर्मा जी दुःखी कैसे हो सकते हैं वे तो जैसे दुआ माँ गते रहते थे, मैडम के मरने की। परसों भी तो कह रहे थे "जब तक यह बुड्ढी नहीं मरेगी मेरी बेटी शादी को राजी नहीं होगी। हरामखोर रांड ने न जाने क्या उल्टी सीधी पट्टी पढ़ा दी है उसे, खुद तो बुड्ढी हो गयी ब्याह नहीं किया, लड़कियों को और बिगाड़ रही है... ऊपर से कहती है बेटी को मिलवाना... न जाने कब मरेगी निकम्मी"।

और तो और यह मैडम का चपरासी है दिलीप जो यहाँ आने के बाद से तीन बार घड़ी देख चुका है वह इतनी तेज आवाज में बड़बड़ा रहा है कि आस-पास के लोगों के साथ दस कदम दूर खड़ी मैडम की छोटी बहन आसानी से सुन ले।" अब ऑफिस मुझे खाने को दौड़ेगा... मैडम को देखते ही एकजान सी आ जाती थी।" यही दिलीप जो पिछले महीने मैडम को एक हफ्ते तक बीमार रहने पर बड़ा खुश रहा था यह जानकर, कि आज भी मैडम नहीं आयेंगी बड़ा खुश होकर गुप्ता जी से कहता था। आज भी उस रांड का चेहरा देखने को नहीं मिलेगा समझ लो आज का दिन भी अच्छा गुजरेगा और जनेऊ को कान में लपेटता हुआ हाथ की कन्नी उँगली उठाकर आगे बड़ जाता फिर घंटों में वापस आता था।

चिता की लपटें तेज होने लगीं एक दूसरे को आँखों से इशारा करते हुए बगलें झाँकते एक-एक कर लोग श्मशान स्थल के गेट से ऐसे बाहर निकलने लगे मानो खुद की चिता को धोखा देकर बाहर निकल आऐ हों। "बढ़ती लपटों के साथ-साथ भीड़ कम होती गयी चिता से धुंए के रूप में उठती जलते शरीर की दुर्गन्ध हवा के साथ उस ब्रेन्च पर भी पहुँचने लगी जहाँ मैडम के गाँव से आए गनेशी और रामप्रकाश बैठे थे।

"सब ठाठ धरा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा, इन्सान भी पानी के बबूले की तरह है... न जाने कब फूट जाय।" गनेशी चिता को एकटक ताकता बड़बड़ाया था। उसे उम्मीद थी बगल में बैठे रामप्रकाश चाचा कुछ बोलेंगे किन्तु राम प्रकाश तो जैसे वहाँ बैठे रहकर भी वहाँ थे ही नहीं। गनेशी विचलित था हवा के रुख से जो जलती चिता से होकर उनकी ओर आ रही थी। उसने रामप्रकाश को झकझोरकर कहा "चाचा! आओ उधर बैठेंगे, इधर ज्यादा दुर्गन्ध आ रही है।" वास्तव में रामप्रकाश जैसे गहरी नींद से जागे थे "हाँ! तू चल" गनेशी को लगा चाचा ने इतना कहने में पूरी ताकत लगाई है। गनेशी को इतनी भीड़ में मैडम के परिवार से भी ज्यादा दुखी रामप्रकाश चाचा दिख रहे थे। लेकिन क्यों? यह सब उसकी समझ में नहीं आ रहा

था। आता भी कैसे गनेशी मैडम को अभी कितना जान पाया था सिवाय इसके कि वे शान्ती शिक्षा निकेतन की प्रधानाचार्या हैं और वह खुद उसमें बाबू है। अभी छह महीने पहले ही तो उसकी नौकरी लगी थी। गनेशी तो शायद इतना भी नहीं जान पाता कि उसकी प्रिंसीपल उसके गाँव अमापुर की हैं अगर पिछले महीने स्व. रमेश काका का बड़ा बेटा दीपक स्कूल में न आया होता। उसी ने बताया था कि "दीदी यहाँ की प्रिंसीपल हैं।"

गनेशी ने चौंककर पूछा था **"सरला मैडम आपकी बहन हैं।"**

"हाँ"

"और तू...?"

"मैं तो यहाँ बाबू हूँ।"

दीपक गनेशी की पीठ थपथपाकर मैडम के कमरे में चला गया था। गनेशी के मन में भी आया था कि वह दीपक से पूछे कि मैडम को कभी गाँव में नहीं देखा मगर न जाने क्या सोचकर रह गया था। इसी धुनामुनी में गनेशी उठकर दूसरी तरफ घास पर जा बैठा उसने रामप्रकाश चाचा पर नजर डाली जो अभी भी उसी मुद्रा में कहीं खोये हुए थे। उन्हें देखकर उसका दिमाग फिर चलने लगा, कहीं रामप्रकाश चाचा और मैडम का कोई चक्कर तो नहीं है...? निश्चित ही कोई चक्कर है क्योंकि श्मशान स्थल पर बैठे-बैठे वह इतना तो समझ ही गया था कि, रामप्रकाश मैडम के परिवार में से तो कम अज कम नहीं हैं क्योंकि मैडम के भाई या बहन रामप्रकाश को बस इतना जानते हैं कि वे उनके गाँव के सरकारी स्कूल में मास्टर हैं। और गनेशी के पिता के दोस्त इसलिए, गनेशी उनसे चाचा कहता है। किन्तु इस सबसे भी उसके दिमाग की हलचल शान्त नहीं हो रही। दोनों के चक्कर वाली बात भी उसके गले नहीं उतर रही क्योंकि रामप्रकाश चाचा तो शहर रहते हैं, गाँव में तो बस पढ़ाने आते हैं कभी-कभार उसके घर आ जाते हैं मगर मैडम को तो उसने बचपन से अब तक, पच्चीस वर्ष की अपनी उम्र में, गाँव में या अपने शहर में देखा तक नहीं, ना ही कोई चर्चा ही सुनी। अतः वह थक गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आ सका।

आप भी सोच रहें हैं कि मैं आखिर किसकी और कैसी कथा सुना रहा हूँ , तो असल बात यह है कि गनेशी की समझ में कुछ नहीं आने वाला। गनेशी का तो तब जन्म भी नहीं हुआ था जब रामप्रकाश शहर के बी.एस.ए. कॉलेज में बी.ए. अन्तिम वर्ष की पढ़ाई कर रहे थे। रिटायर कर्नल के बेटे रामप्रकाश को मौके बे मौके कॉलेज की कई

लड़कियाँ प्यार भरी निगाहों से टकटकी लगा लेती थीं। कोई उनकी सम्पन्नता की मुरीद थीं, कोई उनकी वाकपटुता की गुलाम तो कोई उनकी शक्ल सूरत पर मरती थी। उन सबका रामप्रकाश को ताकने का नजरिया भले ही अलग-अलग था किन्तु पहले-पहल तो सबकी नजरों में उनके प्रति चाहत ही थी। रामप्रकाश उनकी चाहत से जानकर भी अनजान बने फिरते थे। इस लिए लड़कियाँ उन्हें पीठ पीछे गाली भी देतीं थीं जो उनकी खीझ होती उसे वे आपस में बातों के रूप में बांट भी लेंती "यार लिली यह आदमी है या पत्थर...? पता नहीं क्या समझता है अपने आपको।" "फौजी बाप का बेटा है ना कुछ तो गुण होंगे ही।" दूसरी का सपाट जबाव होता था "लेकिन जाएगा कहाँ किसी न किसी पर तो मरेगा ही।" तीसरी लड़की हल्के से लिली के गाल को नौच लेती और अगर रामप्रकाश को उधर आते देख लेतीं तो निरी भारतीय स्त्री बनकर शरमा जातीं या शायद डरती भी थीं उनसे। रामप्रकाश की क्लास उन्हें जिद्दी और गुस्सैले कहती थी तो लड़कियाँ उसे अकड़ू।

आदमी चाहे जितना गुस्सैल, जिद्दी या अकड़ू हो उसके अन्दर कहीं न कहीं एक इन्सान भी बसता है एक कोमल इन्सान जो शायद प्रेम के बिना भी नहीं रह सकता। यह अलग बात है कि प्यार को पनपने के लिए किसी खास जमीन वातावरण या मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती। यही एक ऐसा अंकुर है, जो बिना बोए कहीं भी, किसी के लिए फूट सकता है। ठीक इसी तरह रामप्रकाश के मन में भी बी.ए. प्रथम वर्ष की छात्रा सरला के लिए प्यार का अन्कुर फूटा था। वरना उन्हें क्या जरूरत थी सरला के विषय में यह सब जानकारी करने की कि सरला पास के गाँव अमापुर के रमेश ड्राइवर की बड़ी लड़की है। उन्होंने न जाने कहाँ से ये जानकारी भी कर ली थी कि सरला के घर वालों की आर्थिक स्थिति ज्यादा ठीक नहीं है। वह खुद सिलाई का काम करके अपनी पढ़ाई पूरी कर रही है। कॉलेज में रामप्रकाश अक्सर सरला के आगे-पीछे घूमते किन्तु सरला को जैसे पढ़ने के अलावा दूसरा कोई काम ही न था। ऐसा भी नहीं था कि सरला को बारिश की बूंदें अच्छी न लगती हों। फूलों और उनकी खुशबू से भी अन्जान नहीं थी। अठाहरवें बसन्त की मनोहरी छटा उसके चेहरे पर ही नहीं पूरे बदन में उतर आई थी। मंहगे लिबास में ढंकीं अन्य लड़कियों से ज्यादा आकर्षक वह मामूली सलवार कुर्ते में दिखती चंचल तितली सी। बात-बात पर उसकी उन्मुक्त हँसी। हँसते हुए साँवले चेहरे पर उसके सफेद दांत ऐसे दिखते जैसे अंधेरे आसमान में बिजली चमकी हो। उसके भीतर का युवा मन उसे भी विचलित करता था मौसम के बदलने पर। तब सरला दिल और दिमाग के रूप में दो हिस्सों में बँट जाती और दिल पर मस्तिष्क हावी हो जाता अपने भविष्य की महत्वाकाँक्षाओं और वर्तमान की समस्याओं को लेकर। वह अपने दिल के साथ हारती रहती। इसलिए वह

रामप्रकाश को जानकर भी अनदेखा करती। एकदिन रामप्रकाश ने सामने से उसका रास्ता रोक लिया मगर उससे कुछ भी न कह सके सिवाय उसके चेहरे को देखने के "क्या है...?" कहकर सरला खिलखिला कर हँसी। रामप्रकाश कुछ कह पाते कि वह रामप्रकाश के बगल से होकर निकल गई। अगले दिन लाइब्रेरी में रामप्रकाश ने उसका हाथ पकड़ लिया। सरला एकदम चौंक कर सकपका गई।

"क्या है .....?" सरला के मुँह से इतना ही निकला।

"मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ।" रामप्रकाश के इस अप्रत्याशित प्रस्ताव से सरला भौंचक सी रामप्रकाश का चेहरा ताकने लगी। उसने झटके से अपना हाथ पीछे खींचा और जोर से हँसी...। इस समय सरला की हँसी रामप्रकाश के लिए असहनीय हो रही थी। सरला एकदम से गम्भीर हुई

"मैं अभी शादी के मूड में नहीं हूँ।"

"लेकिन क्यों...?"

"क्योंकि मैं अभी पढ़ना चाहती हूँ।" कहती हुई सरला जाने को हुई।

"पहले मेरी बात सुन लो फिर चली जाना" कहते हुए रामप्रकाश ने उसे फिर रोक लिया "देखो मुझे नौकरी भी मिल रही है... फिर तुम्हें ज्यादा पढ़ने की जरूरत भी क्या है, ... तुम्हें कौन सी नौकरी करनी है? कमाने को मैं ही काफी हूँ।"

"तुम्हारा मतलब है, मैं इतनी एजुकेशन के बाद भी, इतने बड़े खुले आसमान को छोड़कर किसी हाड़-माँस की गुड़िया की तरह लाल जोड़े में लिपट कर रसोई में समा जाऊँ? जहाँ मैं अपनी छोटी-छोटी खुशियों के लिए भी तुम्हारा मुँह ताकती रहूँ... मुझे शादी नहीं, आत्मनिर्भरता चाहिए... इसलिए आइ एम सॉरी...।" कहती हुई सरला वहाँ से तेजी से बाहर निकल गई। रामप्रकाश को लगा जैसे उनके गाल पर किसी ने तमाचा मार दिया हो वह देर तक खड़े दूर जाते हुए सरला को ऐसे ही देखते रहे थे जैसे श्मसान स्थल पर जलती चिता की ओर देख रहे थे। श्मशान स्थल पर चिता की ओर टकटकी लगाए रामप्रकाश चाचा ऐसे लग रहे थे जैसे अब पचास वर्ष की उम्र में तब से अब तक के बीते सत्ताईस सालों के बाद सरला से कुछ कहने आऐं हों। यमुना किनारे की शान्त शीतल हवा में श्मशानघाट की बेंच पर बैठकर चिता को ताकते-ताकते उनकी चुंधियांई सी आँखें मिच गईं। जैसे अपने आप में ही कहीं गहरे डूब गये हों।

मन के ख्यालों में डूबते-उतराते वे एक ऐसे धरातल तक जा पहुँचे जहाँ सरला उनके सामने खड़ी धीमे से मुस्कुरा रही थी। यह सैरेटन होटल का लॉन था। पाँच वर्ष पहले प्रिंसीपल बनने के बाद सरला ने ही उन्हें पत्र डालकर मिलने को वहाँ बुलाया था तब उसके चेहरे पर वह उन्मुक्त हँसी नहीं थी। बसन्ती चेहरे पर जीवन के संघर्ष की रेखाऐं उभर आईं थीं। काली घटा से उमड़ते बालों में धूप सी सफेदी चमक रही थी। आँखों पर चश्मा चढ़ाए साड़ी में लिपटी सरला को रामप्रकाश बिना कुछ बोले अपलक देख रहे थे। अनायास सरला "क्या है...?" कहकर हँस दी। तब रामप्रकाश कुछ सहज हो सके थे। "मैं तुम्हारे गाँव में मास्टरी कर रहा हूँ।" रामप्रकाश ने बात का सिरा पकड़ना चाहा था। "मुझे मालूम है" सरला का सपाट सा उत्तर था।

"लेकिन तुम..." रामप्रकाश ने बात आगे बढ़ानी चाही। सरला के होंठ हल्की सी मुस्कान में फैले "रामप्रकाश तुम्हारी आदत रही है कुरेद-कुरेद कर मन की बातों को पूछने की, लेकिन आज मैं तुम्हें परेशान नहीं करूँगी, सब बताऊँगी।" सरला रामप्रकाश के बगल में बैठ गई थी उसने एक गहरी साँस भरी फिर बोली "उस दिन कॉलेज में मेरा मूड अपसेट हो गया था इसलिए मैं वहाँ से निकलकर शालू के घर चली गयी थी। वहाँ से घर पहुँचते-पहुँचते मुझे शाम हो चुकी थी। मैं बहुत खुश थी क्योंकि उस दिन पापा घर आ रहे थे। मैं पापा से बहुत प्यार करती थी। उस दिन घर में घुसते ही मुझे कुछ अजीब सा लगा था। घर में छोटू ने तेज आवाज में टी.वी. नहीं बजा रखी थी जिसे मैं रोज घर पहुँचकर बन्द कराती थी।

चूल्हे में आग और धुऐं के बिना भी माँ की आँखों में आँसू थे। पापा का सिर उनके दोनों हाथों में टिका था इन सबके बीच की रिक्तता में एक मौत का सा सन्नाटा पसरा था। इतना सब कुछ मुझे विचलित कर देने को कम नहीं था। मैं सहमी सी पापा के पास पहुँची थी "पापा" मेरा इतना कहना था, कि पापा ने एक थप्पड़ मेरे मुँह पर मारा था। उन्होंने दूसरा हाथ उठाया ही था कि चूल्हे से उठकर मम्मी ने पापा का हाथ पकड़ लिया "अब तुम इस पर हाथ उठाकर क्यों खुद को पाप का भागी बना रहे हो।" उस पल मैं बिल्कुल भी नहीं समझ पायी कि माँ ने मुझे पापा से बचाया था या मुझे गाली दी थी। मैं आँखे फाड़े कुछ समझने का प्रयास करती कि माँ मुझे बालों से पकड़कर लगभग घसीटती हुई अन्दर कमरे में ले गयीं थी। उन्होंने किसी कैदी की तरह मुझे कमरे में धकेल दिया था। छोटी के खड़े-खड़े पैर काँप रहे थे। "तू यहाँ क्यों खड़ी है...? निकम्मी चल यहाँ से..." माँ की डाँट से डरकर छोटी बगल वाले कमरे में चली गयी जहाँ में कपड़े सिलती थी। मैं अभी भी कुछ समझ पाने का प्रयत्न कर रही थी कि "बेहया कौन से जनम का बदला लिया है तूने, यही पढ़ती थी तू।" कहकर माँ

रोने लगी थी। "क्यों अब हमारे बुढ़ापे में खाक डलवा रही है?" अंततः मैं झल्ला पड़ी "कोई बताएगा भी आखिर हुआ क्या है?"

"देखो तो**...** बोल कैसी रही है**?"** अम्मा की दाँती भिंच रही थी।

"इसकी जुबान काट दे।**"** पापा बाहर से ही चिल्लाए थे।

"वहाँ से चिल्लाकर ढोल क्यों पीट रहे हो?" अम्मा पापा पर खिसियाईं थीं मगर हाथ मुझ पर बरसे थे। अब तक पापा भी उठकर कमरे में आ गये थे। मैं रो पड़ी और अम्मा को झटके से दूर किया और लगभग चीख पड़ी "क्या किया है मैंने... क्यों इस तरह मार रहें हैं आप मुझे?"

"नाक कटवा दी हमारी... कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा और कहती है क्या किया है मैंने, ले देख यह क्या है?" दबी जुबान से बड़बड़ाते हुए अम्मा ने एक कागज मेरी तरफ बढ़ा दिया था। विस्फरित नेत्रों से मैंने कागज खोलकर देखा था जिस पर लिखा था ड्राइवर साहब, आप मुझे हितैशी समझें या दुश्मन परन्तु बात सच है मुँह से नहीं कह पाया इसलिए लिख कर भेज रहा हूँ, और किसी को बताई भी नहीं है। बात दरअसल यह है कि सरला अब बड़ी हो गयी है अब उसके हाथ पीले कर दो... वैसे भी आप तो बाहर रहते हो इसलिए यह देख भी नहीं पाते कि लड़की क्या कर रही है। बात इशारे में ही समझने की है, नहीं तो ज्यादा दिन यह बात छुप नहीं पाएगी कि लड़की चरित्रहीन है और आप एक चरित्रहीन के बाप... मिलूँगा तो सब बातें खुलकर बता दूँगा... आगे आपकी मर्जी।"

पत्र पढ़ते-पढ़ते मुझे लगा मैं पत्थर हो गयी हूँ जैसे मेरे शरीर का खून जमता जा रहा है। "और कुछ बताना वाकी है क्या?" अम्मा के इन शब्दों ने जैसे मुझे जीवित होने का एहसास करया था। "नहीं!" कहते हुए मैंने कागज को फाड़ दिया था उस समय मुझे मम्मी-पापा की मासूमियत पर तरस आ रहा था, और उनकी बेवकूफी पर गुस्सा भी। क्योंकि मैं समझ गयी थी यह हरकत किसकी है। मैंने हैण्ड राइटिंग को भी पहचान लिया था। मैं अपना सिर पकड़ कर बैठ गयी थी जो बहुत तेज दर्द करने लगा था।

"बेटा मुझे तुझसे ऐसी उम्मीद नहीं थी।**"** पापा की आँखों में आँसू आ गये थे उनकी आवाज भर्रान लगी थी।

"मैंने तो पिछली साल ही मना किया था कि अब मत पढ़ाओ इसे। शहर जायेगी... जमाने के हालात देखो... मगर मेरी एक नहीं चली... बस... अब हो गयी तसल्ली।" अम्मा की इन बातों से पापा जैसे जमीन में गढ़े जा रहे थे।

"पापा ऐसा कुछ नहीं है जैसा आप समझ रहे हैं।" मैं पापा को समझाना चाह रही थी "यह किसी की बदतमीजी है बस और कुछ नहीं।"

"ये बदतमीजी है, तो तू आज इतनी देर तक कहाँ थी...? और दिन तो तीन बजे ही आ जाती थी!" अम्मा बीच में ही बोल पड़ी थी जो चूल्हे में आग जलाने का बे मन प्रयास कर रहीं थीं।

"मैं अपनी फ्रैन्ड के घर मिलने चली गयी थी।"

"बिना बताए और इतनी देर तक...।"

"हाँ तो...? छोटू बिना बताए इससे भी ज्यादा लेट आता है तब।" मेरे सवाल से पापा तिलमिलाए थे।

"वह तो लड़का है।" कहते हुए पापा ने बीड़ी सुलगाई थी।

"तू उसकी बराबरी करेगी?" अम्मा फिर बोलीं थीं। "अब तेरा स्कूल कॉलेज सब बन्द अब तू घर बैठेगी।" अम्मा ने फैसला सुना दिया था। अम्मा के इस फैसले से मेरी सांसे रुकने लगीं थीं जैसे वे मेरे पंख उखाड़कर फैंक देना चाह रहीं हों मैंने बोलने को हिम्मत जुटाई थी।

"तुम कौन होते हो मेरी पढ़ाई बन्द करवाने वाले... मैं आधी-आधी रात तक मेहनत करके खुद पढ़ रही हूँ... और तुम, अपने बच्चे पर विश्वास न करके, किसी गैर की बातों पर भरोसा कर रहे हो जिसे तुम शायद जानते तक नहीं... लेकिन मैं अपना जीवन बर्वाद नहीं कर सकती।" न जाने मुझमें इतनी ताकत उस समय कहाँ से आ गयी थी जब मैंने भी अपना फैसला सुना दिया था।

"न हमें सिलाई करवानी न पढ़ाई, हमारा घर है जैसे हम चाहेंगे वैसे रहेगी तू... समझ ले।" कहते हुए पापा बाहर निकले थे। इस बार मैं रोई-गिड़गिड़ाई "पापा यह सब झूठ है, शरारत है किसी की मुझे पढ़ने दो प्लीज पापा!" मगर पापा नहीं पिघले। पापा के निकलने पर मैं जैसे उनपर चिल्लाई थी।

"तो सुन लो आप भी... मैं अपनी पढ़ाई नहीं छोड़ सकती... चाहे इसके लिए मैं आपका घर छोड़ दूँगी" उस दिन पहली बार मैं पापा से इतनी ऊँची आवाज में बोली थी। सुनकर पापा एकदम से मेरी ओर मुड़े थे।

"क्या... क्या कहा तूने...? कहाँ जाएगी तू...? अब तू ज्यादा पढ़ गयी, जा चली जाना।" पापा ने मेरा बचपना समझकर व्यंग्य किया था या शायद चुनौती। हाँ अम्मा जरूर पापा पर गुर्राई थीं

"क्या कहा तुमने?"

"हाँ, हाँ ठीक कहा है... घर से बाहर निकलकर सब भूल जाएगी... और हम समझ लेंगे हमारे लिए मर गयी। वैसे भी हमारे जीने को बचा ही क्या है।" पापा के यह शब्द घोर हताशा में डूबे थे। उन्होंने जेब से शराब की थैली निकालकर गिलास में उड़ेली थी। रामप्रकाश को यह सब बताते हुए सरला कहीं खुद में ही डूबी हुई थी। "तुम्हें पता है रामप्रकाश उस दिन मेरे घर में किसी ने खाना नहीं खाया था" कहकर सरला शान्त हो गयी जैसे सपने से बाहर आ रही हो उसने रामप्रकाश की ओर देखा रामप्रकाश अभी भी नजरें झुकाए सरला के बोलने का इन्तजार कर रहे थे। रामप्रकाश मुझसे मेरा घर छूटा किन्तु कागज पर लिखा हुआ वह चरित्रहीन शब्द मेरी आत्मा से अलग नहीं हुआ कहकर सरला ने अपना चश्मा उतारा और गीली हो गयीं आँखों की कोरों को अपनी साड़ी के पल्लू से सुखाया था। चश्मे में दिखता रामप्रकाश का बिम्ब जैसे आँखों में उतर आया हो जिसे देखकर रामप्रकाश के होंठ फड़फड़ाए कि, सरला ने अपने होठों पर अँगुली रख कर उन्हें शान्त करा दिया। रामप्रकाश केवल गहरी साँस भर ही ले पाये। सरला बोलने लगी थी "अभी मेरी कहानी खत्म नहीं हुई है मास्टर साहब पहले उसे पूरी सुन लीजिऐ।

मैं दूसरे दिन कॉलेज गयी थी... सुनते ही रामप्रकाश ऐसे चौंके मानो किसी ने सोते में उनको थप्पड़ मार दिया हो...। "क्क क्या तुम...?" मुँह से इतना ही निकला हाँ उनकी कुँए जैसी गहरी हो चली आँखें सिकुड़ कर गोल हो गयीं। सरला पुनः एक कंटीली सी मुस्कान के साथ कहने लगी थी "हाँ... मैं तुमसे मिलने गयी थी, घर तो मैं सुबह ही छोड़ आयी थी, कॉलेज में तुमसे कुछ कहने और बताने गयी थी। परन्तु तुम मुझे वहाँ नहीं मिले थे उस दिन तुम भी कॉलेज नहीं आए थे, कहते-कहते सरला शून्य में ताकने लगी थी जैसे कुछ पढ़ने की कोशिश कर रही हो या लिखावट पर जमी धुंध को छँटने का इन्तजार। एक क्षण बाद वह फिर बोलने लगी। घर छोड़ना मेरे लिए

आसान नहीं था किन्तु जो हुआ था उस सबके साथ वहाँ रह पाना मेरे लिए कहीं ज्यादा मुश्किल था। मैं अम्मा-पापा को तिल-तिल मरते भी नहीं देख सकती थी।

वे अनपढ़ और सामाजिक मान-मर्यादाओं में जकड़े हुए थे तब शायद मैं अकेली उनके समाज से नहीं लड़ सकती थी। मैं रात भर ऐसे ही सोचती रही थी। सुबह घर छोड़ कर मैं बहुत पछता रही थी किधर जाऊँ मैं स्वाभिमानी थी वापस भी नहीं जाना चाहती थी इसी उधेड़ बुन में मैं स्टेशन पहुँच गयी थी। स्टेशन की बैंच पर बैठकर मैं घंटों रोती रही थी। मैंने अपने आँसुओं को बाहर नहीं आने दिया अन्दर ही पीती रही थी क्योंकि मैं जानती थी, बाहर निकलने वाले आँसू इस दुनिया से मेरा दर्द नहीं बेबसी बयाँ करेंगे, और मौका देंगे, उन अनगिनत आँखों को जो चारों ओर से मुझे घूर रहीं थीं या कहूँ नौंच रहीं थीं मेरे जिश्म को जैसे मैं उनके लिए एक इन्सान नहीं स्वादिष्ट गोस्त हूँ केवल गरम देह। उन आँखों में एक वहशीपन था वे आँखें मुझे इन्सानों की नहीं शिकारी चीतों की सी दिख रहीं थीं। मुझे लग रहा था वे आँखें मेरे आँसुओं को देखकर गिरगिट की तरह हमदर्दी का बाना पहनकर मेरे करीब आ जाएँगी फिर शायद मैं भी दूसरे दिन अखबार की एक छोटी खबर बन कर ही रह जाऊँगी। सरला ने एक पल रामप्रकाश के चेहरे पर नजर डाली, रामप्रकाश ऐसे पलकें झपक रहे थे मानो किसी रोमाँ चकारी शिकार का हाल सुन रहे हों रामप्रकाश तब घर से निकलकर मुझे चिन्ता भूख की नहीं बल्कि इन्सानों के बीच खुद को इन्सान समझकर सुरक्षित खड़े रहने की थी।

बावजूद इसके मैं हारना भी नहीं चाहती थी क्योंकि हारना मेरे लिए मौत के बराबर था। मैं खड़ी होना चाहती थी तुम्हारे समाज की मर्यादा में लिपटे चरित्रहीन शब्द के खिलाफ जो स्त्रियों के सपनों और आकाँक्षाओं को मार कर उन्हें आत्महत्या करने को विवश करता रहा है... किन्तु मैंने जहर नहीं खाया और ना ही रेलवे लाइन पर लेट कर अपनी जान दी बल्कि सीना ताने खड़ी हुई अपने इरादों के साथ कहते-कहते अचानक सरला किलकती सी रामप्रकाश की ओर मुड़ी "जानते हो रामप्रकाश! उस समय अचानक मेरे दिमाग में इकबाल की दो लाइनें कौंधीं थीं जो मैंने बचपन में पढ़ी थीं - 'संसार में अपने पंखों को फैलाना सीखो, क्योंकि दूसरों के पंखों से उड़ना संभव नहीं।' मैं बचपन में इनका इनका अर्थ नहीं समझ सकी थी लेकिन उस दिन स्टेशन पर मैंने इन लाइनों को भली भांति समझा था तब खुद को साबित करने की दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ मैं अपने शहर से दूर इस शहर में चली आई थी।"

इस तरह विदुषियों सी बोलती हुई सरला में, रामप्रकाश की आँखे कॉलेज में नजरें झुकाए चुपचाप सहमी सी घूमने वाली सरला को खोज रहीं थीं। इसकी गवाही उनकी आँखे सरला के चेहरे पर एवं सिकुड़ी हुई भौंहे दे रहीं थीं। उनका मुँह खुला का खुला रह गया था उनका अचम्भा सातवें आसमान पर था। सरला उठकर टहलने लगी थी वह अचानक रुकी और बोली "रामप्रकाश तुम्हें यह किसी फिल्म की कहानी सी लग रही होगी।" वह रामप्रकाश की ओर ऐसे मुड़ी थी जैसे क्लास में बैठे बच्चों को हिदायत कर रही हो। "ऐसा समझने के लिए पूरी तरह तुम ही दोषी नहीं हो क्योंकि तुम भी, उसी समाज का एक अंग हो जो सदियों से स्त्री को अबला समझने के भ्रम में जीता आ रहा है। क्या फर्क पड़ता है अगर लक्ष्मीबाई, चाँदबीबी, रजिया सुल्तान, बेगम हजरत महल, मीरा, सहजोबाई जैसी अनगिनत स्त्रियों की वीरता एवं संघर्ष के कारनामों से भारतीय इतिहास रंगा हुआ है" सरला का चेहरा गम्भीर होता जा रहा था वह किसी रौ में बोले जा रही थी "इंदिरा गांधी, मदर टेरेसा कल्पना चावला, मैडम क्यूरी जैसी स्त्रियों के गाढ़े हुए परचम अभी भी हमारे बीच लहरा रहे हैं।" अब सरला की आवाज भी बुलंद होती जा रही थी रामप्रकाश को सरला कोयी महान क्रांतिकारी सी नजर आ रही थी। सरला निरंतर बोल रही थी।

महाश्वेतादेवी, मैत्रेयीपुष्पा तसलीमा, अरुंधती, मेधापाटकर, बछेन्द्रीपाल, सानिया मिर्जा, मायावती जैसी हजारों स्त्रियाँ प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में मौजूद हैं" बोलते-बोलते सरला एकदम शान्त होकर गहरी-गहरी सांसे लेने लगी। उसकी साँसों की गति के साथ उठता गिरता उसका वक्ष स्थल उसके भीतर उठ खड़े हुए किसी ज्वार भाटे को दर्शा रहा था। लगभग क्रोध से विकृत होता सरला का चेहरा डरावना हो गया था। जिसे देखकर रामप्रकाश के चेहरे की हवाइयाँ उड़ रहीं थीं। उन्हें लग रहा था जैसे वे किसी अदालत में अपने फैसले का इन्तजार कर रहे हों। कुछ पल की क्रिया के बाद सरला खुद को स्थिर करते हुए बोली थी "इतने असंख्य प्रमाणों के बाद भी तुम्हारी दकियानूसी मानसिकता स्त्री को खुद से कमतर और कमजोर आंकती रही।" सरला के ये शब्द जैसे बर्फ में डूबे थे। सरला पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदती हुई कहने लगी थी "रामप्रकाश मैं तुम्हारी जिन्दगी में आना चाहती थी, मगर तुम पर बोझ बनकर नहीं, साथी बनकर इसलिए मैं पढ़ना चाहती थी; आत्मनिर्भरता के लिए। मगर तुमने मुझे तोड़कर जीतना चाहा था क्योंकि तुम समाज से मिले अपने अधिकार को भली भांति जानते थे... स्त्री के चरित्र गठन का अधिकार... जिसके मानक तुमने बनाए हैं।

तुम ही उसके चरित्र का सर्टिफिकेट देने का अधिकार रखते हो। और वही तुमने किया था... मेरे चरित्रहीन होने का सर्टिफिकेट देकर" सरला की अँगुली सीधी रामप्रकाश की ओर थी। सरला के इन शब्दों से रामप्रकाश पर जैसे बम फटा था उनका चेहरा काला पड़ गया था। वे मुँह में आया थूक भी नहीं निगल पा रहे थे। रामप्रकाश को, सामने खड़ी सरला की मुस्कुराहट और परेशान कर रही थी। उन्हें सरला के चेहरे की मुस्कान सामान्य नहीं लग रही थी। सरला की मुस्कान से वातावरण जहरीला होने लगा था। जिसमें रामप्रकाश को साँस लेना मुश्किल हो रहा था उन्हें घुटन हो रही थी।

"सरला... म...मुझे...?" इन दो शब्दों को बोलने में रामप्रकाश ने शरीर की पूरी ताकत झौंक दी थी। इतना भर कह पाने में रामप्रकाश का शरीर लगभग कंपकंपा गया था। सरला जैसे उनकी स्थिति भांप गयी थी। उसने रामप्रकाश को हाथ के इशारे से चुप करा दिया और खुद बोली "रामप्रकाश तुम्हारे क्षमा माँ गने या तुम्हें क्षमा कर देने से क्या बदल जाएगा... मेरी मम्मी का मुझ पर अटूट विश्वास, पापा का गर्व या मेरे जीवन के महत्वपूर्ण सत्ताईस साल... लेकिन, मुझे कोई अफसोस भी नहीं है...।" सरला ने रामप्रकाश को सहज करना चाहा जो अब तक सिमटे-सिकुड़े किसी कैदी की तरह बैठे थे। सरला अचानक चिहुँक पड़ी "अरे हाँ... मैं तो तुम्हें अपनी कहानी सुना रही थी... तो इस शहर में आते हुए ट्रेन में ही मेरी मुलाकात शांती शिक्षा निकेतन की संस्थापिका डॉ. विमलेश जी से हुई थी। सन की तरह सफेद बालों वाली उस सत्तर वर्षीय महिला की आँखों की चमक को मैं अभी तक नहीं भूल पाई हूँ।

मैं तो ट्रेन में सीट के कोने में चिपकी बैठी खुद में ही इतनी डूबी हुई थी कि मुझे तो पता ही नहीं चला कि वे मेरे सामने वाली सीट पर कब आकर बैठ गयीं थी। "विचारों में इतना डूबना ठीक नहीं होता बेटा।" मुझे टटोलते हुए यह वाक्य उन्होंने दुबारा कहा था। तब मैं सचेत हुई थी। मैं जैसे कोमा से बाहर आयी थी। तब मैंने उन्हें सामने बैठे देखा था। मैंने उन्हें नमस्ते किया था। तब उन्होंने ही बताया था कि मैंने एक बार तो उनकी बातों को सुना ही नहीं था। मुझे लगा वे शायद मुझसे बातें भी नहीं करतीं यदि उस कम्पार्टमेंट में भीड़-भाड़ होती तो। दरअसल कम्पार्टमेंट में वह भी मेरी तरह तन्हा थीं। हँसमुख और वाचाल डॉ. विमलेश की मोटे चश्मे के पीछे छुपी अनुभवी आँखों ने जैसे मेरे भीतर की वेदना को पढ़ लिया था और बातों ही बातों में मैंने उन्हें वह सब बता दिया था जो मैंने तुम्हें बताया है न जाने क्यूँ डॉ. विमलेश को यह सब बताते हुए मैं अपने आँसुओं को बाहर निकलने से रोक नहीं पाई। डॉ. विमलेश मेरी बगल में बैठ गयी थीं। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा था "तुम जानती हो औरत की सबसे बड़ी कमजोरी क्या है...? उसके ये आँसू। इसलिए आँसू नहीं, खुद

को साबित करो। मुझे देखो मैं... खैर छोड़ो...।" इतना कहकर उन्होंने अपनी बात अधूरी छोड़ दी थी।

डॉ. विमलेश के इस अधूरे वाक्य ने मेरे अन्दर एक अजीब सी उत्सुकता भरी बेचैनी पैदा कर दी थी। उनके विषय में जानने की मेरी बेकली भरे अनुरोध के बाद वे हल्की सी मुस्कुराती बोलीं थीं। "मेरी शादी एक सम्पन्न परिवार में हुई थी पहले बच्चे के रूप में हुई लड़की बची नहीं या कहूँ बचाई नहीं गयी। दूसरे बच्चे को जन्म ही नहीं लेने दिया गया क्योंकि वह भी...। तब मैंने पहली बार अपने उस पति का विरोध किया था जो मुझे बहुत चाहता था। परन्तु मेरे विरोध के साथ ही जैसे मैं ही उसकी सबसे बड़ी दुश्मन बन गयी थी। असल में मैंने उसके इशारों पर नाचने की बजाय अपनी भी इच्छाऐं जाहिर करना शुरु कर दिया था। हम एक ही छत के नीचे एक दूसरे से जैसे पराये हो गये थे। वह मुझसे पीछा छुड़ाना चाहता था, परन्तु वह मुझे मार तो सकता नहीं था क्योंकि वह जानता था, बाद में शायद समाज और कानून के हाथों बच वह भी नहीं पाएगा, मेरे मुँह पर तेजाब भी नहीं फैंक सकता था क्योंकि तब भी वहीं फंसता" कहते-कहते डॉ. विमलेश रुक गयीं थीं। उनके चेहरे पर घृणा के भाव साफ नजर आ रहे थे। मैंने ही टोका था। "मैडम बात पूरी करो प्लीज।" वे धीमे से मुस्कुरा पड़ीं। उनका चेहरा अब सामान्य हो चला था।

अचानक उनके मुँह से शान्त गम्भीर शब्द फूटने लगे "हाँ उसके पास एक हथियार था। एक ऐसा हथियार जो केवल औरत के लिए बना है जिसका प्रहार करने से कानून या समाज को भी कोई फर्क नहीं पड़ता परन्तु औरत अवश्य जीवित रहते हुए भी मर जाती है...। केवल एक शब्द चरित्रहीन और सब खत्म।" कहते हुए डॉ. विमलेश की एक विषैली हँसी का ठहाका ट्रेन के डिब्बे में गूंज गया था मगर यह क्या चश्मे के पीछे छिपी उनकी आँखें किसी झील सी भर गयीं थीं। कुछ देर वे शान्त रहीं चश्मे के भीतर भरी झींलों को उन्होंने अपने रुमाल में सोख लिया था। अब उनकी आवाज भारी हो गयी थी।" तब मुझे पहली बार लगा था कि वह आदमी मुझे प्यार नहीं करता बल्कि उस कठपुतली को चाहता था जो उसकी अँगुली के इशारे पर घूमती थी। मैंने भी वह शहर छोड़ दिया था दुनिया बहुत बड़ी है यह सोचकर।"

उनकी बात सुनकर मेरे मन में एक बड़े सवाल ने फन उठाया था "फिर आपने इतना बड़ा निकेतन कैसे शुरु किया?" मैं उनके मुँह को ताकने लगी थी। डॉ. विमलेश ने दो घूंट पानी पिया और अपनी आँखों से चश्मा उतारकर रुमाल से साफ करते हुए बताया था "मैंने जीविका के लिए एक स्कूल में नौकरी की और अपने हिस्से की

सम्पत्ति के लिए पूरे दस साल तक केस लड़ा। अंततः मैं जीत गयी तब मैंने ऐसे निकेतन का सपना देखा जिसकी सब टीचर तेरे जैसे मजबूत इरादों की हैं जिन्हें समाज ने सम्मान नहीं दिया तो वे एक ऐसा भविष्य गढ़ने में जुट गयीं हैं जो उन्हें गुरु ही नहीं आदर्श मानता है।" मैं जब डॉ. विमलेश के साथ गाड़ी से उतरी तो मैं खुद में अजीब सी ताकत क अनुभव कर रही थी जैसे मुझे मेरी मन्जिल मिल गयी थी। उसके बाद मैंने कभी मुड़कर नहीं देखा। वहीं रहकर पढ़ाई पूरी की और प्रिंसीपल बनी" सरला के शान्त होने पर रामप्रकाश ने गहरी निःश्वास छोड़ी।

"तुम्हें कभी गाँव की या अपने शहर की याद नहीं आयी।" रामप्रकाश ने सरला को एक बार फिर कुरेदना चाहा था। उन्हें आभास भी नहीं था कि इस बात से सरला का मुँह इतना कसैला हो जाएगा। सरला इतनी बेचैन हुई कि वातावरण में उसकी सिसकियाँ गूँजने लगी। जैसे रामप्रकाश ने यमुना के शान्त पानी में पत्थर फैंक दिया हो।

"नहीं भूली... अब तक नहीं भूल पाई, गाँव की गलियों के बचपन को, पानी भरे खेतों में अपने पैरों के निशानों को, छत के ऊपर आकाश में बादलों के बीच उभरती आकृतियों को, उन पेड़ों को जो मेरे गुनगुनाने के साथ झूमने लगते थे।" कहते-कहते सरला फफक पड़ी थी। वह जी भर रो लेना चाह रही थी। बीते सत्ताईस सालों से रुका आँसुओं का बाँध जैसे टूट गया था। वह देर तक रोती रही रामप्रकाश चाह कर भी सरला के आँसू नहीं पौंछ पा रहे थे। सरला की गिघियाई सी आवाज निकल रही थी "तुम्हारे एक कागज के टुकड़े ने मुझे सबके लिए मार दिया रामप्रकाश।" सरला अब गम्भीर होकर कह रही थी। "मैंने कितनी बार सोचा वहाँ घूम आने को। मैंने एक पत्र डाला था घर पर, बताया था, मैं सकुशल हूँ, कभी आऊँगी।" सरला के आँसू थमे नहीं थे "जानते हो रामप्रकाश मेरे पास पत्र का जबाव आया था। पापा ने लिखा था, सरला अगर जरा भी शर्म बची हो तो इधर मत आना जैसे-तैसे यह समाज तुझे भूल पाया है, कम अज कम तेरे बहन भाइयों की शादी तो हो पायेगी। उसके बाद...।

हाँ छोटी का फोन यदा-कदा आता रहता था। एकदिन छोटी ने बताया था मेरी शादी है पापा पैसों के लिए बहुत परेशान घूम रहे हैं, तब मैंने उसकी शादी के लिए रुपये भेजे थे... तो जानते हो, पापा ने सहज वे रुपये ले लिए थे। फिर दूसरे दिन, फोन पर छोटी ने ही बताया था कि, पापा ने छोटू से कहा था कभी चुपचाप घूम आना उसके पास...। माँ पिताजी के मरने के बाद आज सब यहाँ मौजूद हैं इस चरित्रहीन की अन्त्येष्टी में, शायद खुश होंगे, एक चरित्रहीन इस दुनिया से चली गयी और शायद तुम भी

रामप्रकाश।" कहते हुए सरला के होंठ विषैली मुस्कान में डूब गये थे। "देखो! दुःखी मैं भी नहीं हूँ क्योंकि मुझे खुशी है कि, मेरी पढ़ाई हुई कितनी ही लड़कियाँ आज अपनी इच्छा से स्वतंत्र और सुखी जीवन जी रहीं हैं।" इतना कहकर सरला हँसती हुई रामप्रकाश से दूर जाने लगी। रामप्रकाश की लाख मिन्नतें भी उसे रोक नहीं पाईं।

रामप्रकाश हड़बड़ाए से उठे जैसे होश में आ गये हों वे होटल में नहीं श्मसान स्थल की बैंच पर अकेले बैठे थे सामने सरला मैडम की जलती चिता राख के ढेर में बदल चुकी थी रामप्रकाश चाचा ने अपनी जेब से एक कागज का टुकड़ा निकाला उसे एक बार पढ़ा "तू चरित्रहीन नहीं है" और उसे मैडम की चिता में डाला था। साथ ही रामप्रकाश की आँखों से दो बूँद आँसू भी टपके थे।